भारत के राज्यों के पुनर्गठन के सिद्धांत और संभावनाएँ
Principles and Prospects of Resizing India's States

लुईस टिलिन
Louise Tillin
February 27, 2012

भारत के सबसे बड़े राज्य उ.प्र. में चुनाव हो रहे हैं और कदाचित् यही कारण है कि यह सवाल एक बार फिर से सिर उठाने लगा है कि भारतीय राज्यों की संख्या और सीमांकन पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए या नहीं. आज से साठ साल पहले उ.प्र. को पूरे भारत का एक ऐसा अविभाजित राज्य माना जाता था, जिसे विभाजित करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, लेकिन उ.प्र. की सत्ताधारी नेता मायावती ने चुनाव में कूदने से ठीक पहले इस राज्य को चार भागों में बाँटने की घोषणा कर दी. विश्व की सभी संघीय प्रणालियों में भारत (पाकिस्तान भी) ही एक ऐसा देश है, जिसमें प्रति व्यक्ति राज्यों या संघीय उप-इकाइयों की संख्या सबसे कम है. न केवल राज्यों की संख्या कम है, बल्कि भारत के राज्यों के आकार और उनकी आबादी में भी भारी विषमता है. उदाहरण के लिए उ.प्र. की आबादी सबसे छोटे राज्य सिक्किम से 328 गुना ज़्यादा है. यदि तुलना की जाए तो अमरीका के कैलिफ़ोर्निया और वायोमिंग राज्यों के बीच 66 और 1 का अनुपात है और ब्राज़ील के सबसे बड़े राज्य साओ पावलो और सबसे छोटे राज्य रोरैमा में 91 और 1 का अनुपात है. भारतीय राज्य की *औसत* आबादी 37.7 मिलियन है, जो अमरीका के सबसे बड़े राज्य की आबादी है.

भारत में राज्यसभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व आबादी के आधार पर किया जाता है जबकि ब्राज़ील और अमरीका में समान आधार पर किया जाता है. कम आबादी वाले राज्यों के लोगों के वोट का मूल्य बढ़ाकर असमान आकार के राज्यों से "एक व्यक्ति,एक वोट" के लोकतांत्रिक आधार को कोई चुनौती नहीं मिलती. परंतु लोकसभा में राज्यों में संसदीय सीटों के वितरण में निरंतर बने गतिरोध से तेज़ी से बढ़ती आबादी वाले राज्यों में मतदाताओं के खिलाफ़ जानबूझकर भेदभाव नहीं किया जाता. जो भी कारण हो, संसद में उ.प्र. का कम प्रतिनिधित्व है. लेकिन आबादी के परिवर्तन के पैटर्न को प्रतिबिंबित करने के लिए राज्यों में संसदीय सीटों की संख्या में दुबारा से आबंटन या वृद्धि किए बिना ही राज्यों का निर्माण करने से भी इन असंतुलनों को कोई चुनौती नहीं मिलती. भारतीय राज्यों का आकार बदलने या उनकी संख्या बढ़ाने पर होने वाली बहस का कोई भी संबंध न तो संघीय स्तर पर प्रतिनिधित्व के आज के सवाल से जुड़ा है और न ही इस बात के लिए कोई गंभीर चिंता है कि अनेक क्षेत्रीय माँगों को देखते हुए "संघ" उन्हें एकजुट बनाकर रख सकता है या नहीं.

इसके बजाय राज्यों की संख्या और उनकी सीमाओं पर बहस तीन मुख्य सिद्धांतों पर केंद्रित हो गई है. पहला है सांस्कृतिक सिद्धांत, जिसके द्वारा विशिष्ट सांस्कृतिक या जातिगत समुदाय के आधार पर मान्यता देने के लिए राज्यों के निर्माण की माँग की जाती है या

उनका निर्माण किया जाता है. दूसरा सिद्धांत प्रशासनिक है, जिसमें राज्यों की संख्या और आकार का निर्णय प्रशासन की गुणवत्ता संबंधी सरोकारों पर निर्भर होता है. इस प्रकार इस प्रावधान के अंतर्गत सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच और उच्च स्तर पर अर्थव्यवस्था को ले जाने के बीच एक प्रकार का संतुलन स्थापित करना होता है. तीसरे सिद्धांत का उपयोग आर्थिक उदारीकरण के संदर्भ में बहुत ज़ोरदार ढंग से किया जाता रहा है, क्योंकि अधिक और छोटे राज्यों के निर्माण से राज्य स्तर पर प्रतिस्पर्धा को और नीतिगत उन्मेष को बढ़ाया जा सकता है और इससे आर्थिक विकास को बल मिल सकता है और क्षेत्रीय असमानता को मिटाने में मदद भी मिल सकती है. सबसे गरीब राज्य होने के बावजूद छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड (भारत के नवनिर्मित तीन राज्यों में से इन दो राज्यों का निर्माण नवंबर, 2000 में हुआ था) और बिहार (झारखंड नामक तीसरे राज्य के निर्माण से "मूल राज्य" के शेष भाग) में 2000 के दशक में अन्य भारतीय राज्यों की तुलना में तेज़ी से आर्थिक विकास हुआ और यही कारण है कि तीसरे तर्क के प्रति लोगों का रुझान अधिक बढ़ गया है.

1950 और 1960 के दशकों के बीच राज्यों के पुनर्गठन का मुख्य कारण भाषा था. सन् 1960 के बाद भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में गठित राज्यों के पुनर्गठन का आधार स्थानीय "देशी" समुदायों को विभिन्न प्रकार से मान्यता और संरक्षण प्रदान करना था. हाल के दशकों में राज्यों के पुनर्गठन का आधार इनमें से कोई भी सिद्धांत नहीं था. सन् 2000 में छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड नामक नए राज्यों का निर्माण हिंदू राष्ट्रवादी भाजपा के नेतृत्व में गठित केंद्र सरकार ने किया था, जो ऐतिहासिक रूप में भारतीय संघ के ढाँचे के भीतर बहुसांस्कृतिक दृष्टि का विरोध करती रही है. तब से भारत के पहले भाषाई राज्य आंध्र प्रदेश में अलग तेलंगाना राज्य के गठन की माँग बहुत ज़ोरदार ढंग से की जाने लगी है और अब यह माँग अन्य राज्यों में भी की उठने लगी है. इससे भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के सिद्धांत पर प्रश्नचिह्न लग गया है.

हिंदू राष्ट्रवादियों के विरोध के बावजूद भारतीय संघ की बहुसांस्कृतिक अवधारणा को स्वीकृति मिलने लगी है और नए राज्यों के पुनर्गठन को भाषाई चश्मे के बजाय सांस्कृतिक चश्मे से देखने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है. यही कारण है कि छत्तीसगढ़ और झारखंड को मोटे तौर पर "जनजातीय" राज्यों के रूप में वर्णित किया जाता है. इससे स्पष्ट रूप में इस धारणा की पुष्टि होती है कि इन राज्यों के निर्माण से *आदिवासी* या "देशीय" समुदायों के प्रतिनिधित्व में सुधार हुआ है. इन समुदायों का प्रतिनिधित्व क्रमशः 32 और 26 प्रतिशत है. इससे झारखंड के लंबे समय से चले आ रहे जनांदोलन की माँग भी पूरी हो गई है, किंतु छत्तीसगढ़ में ऐसा जनांदोलन नहीं हुआ था. इससे राज्य के निर्माण के रूप में एक ऐसी माँग के इर्द-गिर्द कई रूपों में ऐसी लामबंदी हुई है जिससे राष्ट्रीय संसाधनों (विशेषकर जंगलों और खनिजों) के प्रबंधन में *आदिवासियों* का प्रतिनिधित्व बढ़ गया है,जो बड़ी संख्या में झारखंड (और नज़दीक के छत्तीसगढ़) में बसे हुए हैं. राज्य के निर्माण की एक और व्याख्या विशेषकर सन् 2000 में

यह भी सामने आई है कि पूँजी की भूख के कारण नए क्षेत्रों के दोहन की माँग भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है. इस दृष्टि में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में छत्तीसगढ़ और झारखंड के नवनिर्मित राज्यों द्वारा अपनाई गई एक प्रकार की आक्रामक तेज़ी (इसमें नए-नए ढंग के महत्वपूर्ण संघर्ष भी शामिल हैं) की बेचैनी और उत्तराखंड के तथाकथित "पर्वतीय" राज्य द्वारा मैदानी इलाकों के लिए अपनाई जाने वाली औद्योगिक नीति भी प्रतिबिम्बित होती है.

फिर भी हाल ही के दशकों में नए राज्यों के निर्माण से यह स्पष्ट होता है कि इनके पीछे पूँजी का दबाव या मान्यता के दावे जैसा कोई सीधा तर्क नहीं रहा है. फिर भी सबसे नए निर्मित राज्यों की स्पष्ट भूसांख्यिकी के बावजूद इसे मात्र भारत के बहुसांस्कृतिक संघ के उस ढाँचे में नहीं देखा जाना चाहिए, जिसके अंतर्गत जनजातीय समुदाय बहुल क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व दिया गया है. सन् 2000 में जब केंद्र सरकार द्वारा अलग राज्य की माँग मान ली गई थी तो उन क्षेत्रों में व्यापक पूर्व-राज्य की राजनैतिक स्थितियाँ तैयार की गई थीं, जिसके लिए अलग राज्य की माँग की गई थी और जो विशिष्ट जनजातीय समूहों या गुटों से कहीं आगे बढ़कर थीं. इसके अलावा सांस्कृतिक दृष्टि से "मान्यता" के आधार पर छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड राज्यों के निर्माण की माँग नहीं की गई थी. छत्तीसगढ़ में तो निचले स्तर पर अलग राज्य की ज़ोरदार माँग भी नहीं थी. बहरहाल उच्च स्तर के कुछ राजनैतिक लोगों ने ज़रूर इसका समर्थन किया था. और न ही इसकी स्थिति औद्योगीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के विवादग्रस्त क्षेत्रों के नज़दीक होने के कारण थी. वास्तव में इनके प्राकृतिक संसाधनों तक बेहतर पहुँच बनाकर पूँजी जुटाने के लिए ही इन नए राज्यों का गठन मात्र एक उपहार के रूप में किया गया था. इस दृष्टि से यह लगता है कि इसके अंतर्निहित कारणों में व्यापार और उद्योग से जुड़े हित ही प्रमुख थे, किंतु इनके दृष्टिकोण में कभी-कभार अनिश्चितता भी रहती थी, फिर भी इन राज्यों की माँग में देशीय तत्व की प्रबल संभावना भी मौजूद थी.

राज्यों के निर्माण की नवीनतम प्रक्रिया बहुत जटिल है और इसके अनेक मूलभूत कारण हैं जो पिछले एक लंबे समय के दौरान उजागर हुए हैं. राज्यों के निर्माण का समय भी विशिष्ट क्षेत्रों की लामबंदी की गहराई और सघनता के बजाय राज्यों और अखिल भारतीय स्तर की राजनैतिक परिस्थितियों को ही प्रतिबिम्बित करता है. यह आवश्यक नहीं है कि नए राज्य ऐसे अधिकाधिक सघन क्षेत्रीय राजनैतिक समुदायों के साथ संघीय इकाइयों का निर्माण करते हों,जहाँ स्थानीय आबादी के अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया हो या अधिक कारोबारी मैत्रीपूर्ण वातावरण की गारंटी हो गई हो. हाँ,यह ज़रूर है कि अस्थायी तौर पर परस्पर-विरोधी समूहों,लक्ष्यों और हितों के बीच तनाव कुछ हद तक विलीन हो गया हो. इसलिए राज्यों के निर्माण को बहुत हद तक "अस्पष्ट समझौते" के रूप में ही देखा जा सकता है.

भावी राज्यों के पुनर्गठन की संभावनाएँ भी स्पष्ट सिद्धांतों के बजाय बदलती राजनैतिक स्थितियों पर निर्भर करती हैं. नए राज्य के निर्माण के लिए आवश्यक है कि केंद्र सरकार इसके लिए एक कानून पारित करे. कांग्रेस पार्टी ने उ.प्र. के अपने चुनावी घोषणापत्र में नए राज्य पुनर्गठन आयोग के गठन की माँग की है,लेकिन दिल्ली में उनकी केंद्र सरकार होने के कारण उनमें किसी प्रकार की ॉकोई जल्दी भी दिखाई नहीं पड़ती है. राजनैतिक और चुनावी सवाल सामने आते जाते हैं और नए भावी राज्यों की संभावनाएँ भी उनके अनुरूप आकार ग्रहण करने लगती हैं. लोकतांत्रिक प्रक्रिया से नए राज्यों की माँगें की जा सकती हैं और तदनुसार नए राज्यों का निर्माण भी किया जा सकता है. यही लोकतंत्र की शक्ति है,भले ही इसके अपेक्षित परिणाम न निकलें, लेकिन इससे नए राज्य के निर्माण के समर्थक ज़रूर संतुष्ट हो जाते हैं.

लुईस टिलिन, किंग्स इंडिया इंस्टीट्यूट, किंग्स कॉलेज लंदन में राजनीति शास्त्र की लेक्चरर हैं और रीमैपिंग ऑफ़ इंडियाः न्यू स्टेट्स ऐंड देयर पॉलिटिकल ओरिजिन्स (हर्स्ट ऐंड कं. / कोलंबिया युनिवर्सिटी प्रेस,आगामी प्रकाशन) की लेखिका हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>